संरक्षक

प्रो. संजीव जैन

माननीय कुलपति

जम्मू केन्द्रीय विश्वविद्यालय

शारदा

त्रैमासिक शारदा भित्ति पत्रिका

वर्ष 2024, अंक–8

(अक्टूबर–दिसंबर)

परामर्शदाता

प्रो. भारत भूषण

(विभागाध्यक्ष)

हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग

प्रधान सम्पादक

डॉ. शशिकांत मिश्र

(सह–आचार्य)

हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग

सम्पादक

अँशु कुमारी (शोधार्थी)

इंद्रा देवी (शोधार्थी)

पत्रिका में प्रस्तुत रचनाओं एवं आगामी अंक हेतु सुझाव के लिए संपर्क सूत्र दूरभाष – 9030963026 (डॉ. शशिकांत मिश्र)

विश्वविद्यालय वेबसाइटः https://www.cujammu.ac.in

विभागीय मेलः office.jnd@cujammu.ac.in

मोक्षदायिनी भारतीय संस्कृति

माँ भारती और भारतीय संस्कृति की महानतम गाथा सचमुच वर्णनातीत है, शब्दातीत है। इस धरा पर आश्रित कितने ऋषि–मुनियों ने अपनी दिव्य शक्ति से माँ भारती तथा भारतीय संस्कृति की अंतरात्मा को उद्भासित तो किया है, साथ ही समूचे विश्व पटल पर माँ भारती के मस्तक को ऊँचा बनाये रखने में अपने जीवन को समर्पित भी कर दिया है। यह परम्परा आज भी गतिमान है। आज भी विश्व पटल पर माँ भारती का गुणगान हो रहा है । पूरे विश्व को भारत ने वेद जैसे ज्ञान का भंडार प्रदान किया है। आज भी पूरा विश्व भारत के दिशा–निर्देश की राह ताक रहा है । आज भी पूरे विश्व को भारत शांति का संदेश दे रहा है। जहाँ पूरे विश्व में हा–हाकार मचा हुआ है, वहाँ माँ भारती के सपूत उस हा–हाकार को नियंत्रण करने के लिए प्रयासरत हैं, क्योंकि भारत बुद्ध का देश है, महावीर का देश है, जिसने पूरे विश्व को भातृत्व, सौहार्द एवं अहिंसा का पाठ पढ़ाया है, तथा शांति की शपथ दिलायी है। जिस देश में गो, गंगा, गीता तथा गायत्री की पूजा हो, वह देश तथा उसकी संस्कृति निश्चित रूप में मोक्षदायिनी है। यह अंक अक्टूबर से दिसम्बर तक का अंक है, अतः इन तीन माह में कई ऐसे पर्व यहाँ मनाये जाते हैं, जो भारतीय संस्कृति के लिए गौरव के पर्व हैं। अक्टूबर में नवरात्रि पर माँ शक्ति का धरा पर आगमन तथा करवा चौथ जैसे पर्व मनाये जाते हैं, जहाँ चारों पहर माँ शक्ति की आराधना के साथ वातावरण हर्षोल्लास से भरा होता है। नवम्बर माह में गोवर्धनपूजा, छठ जैसे महान पर्व से धरा शोभायमान रहती है तथा हल्की–हल्की ठंड के साथ पुनः आता है दिसम्बर माह, जहाँ अंग्रेजी नववर्ष के आगमन का जोर रहता है। साथ ही ठंड के प्रकोप के बीच आग सेंकने का आनंद एवं वनानी के प्रमुख दार्शनिक स्थलों पर सफेद चादर से ढ़की पहाड़ी तथा वनानी का चित्ताकर्षक दृश्य को निहारने के लिए जुटी सैलानियों की भीड़ का विशेष महत्त्व रहता है। इन माहों में हमारे नवोन्मेष रचनाकारों की कलम को ताकत भी मिल जाती है, और उनकी कलम से निसृत हो जाती हैं भिन्न–भिन्न प्रकार की रचनाएं। इन भिन्न–भिन्न रचनाकारों से संपर्क साधकर इस 'शारदा' भित्ति पत्रिका के माध्यम से उनकी जोशीली रचनाओं को पाठकों तक पहुँचाने का प्रयास करने वाली हमारी शोधार्थी संपादकद्वय अँशु कुमारी तथा इंद्रा देवी का प्रयास सचमुच अतुल्य और शलाघ्य है। वे बधाई के पात्र हैं। हम सभी को इस मंच से जोड़ने वाले हमारे विश्वविद्यालय के कुलगुरु तथा 'शारदा' भित्ति पत्रिका के संरक्षक प्रो.संजीव जैन जी का कितना भी गुणगान किया जाए कम होगा। हमेशा से पत्रिक प्रकाशन में सुपरामर्श देने वाले हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग के अध्यक्ष प्रो. भारत भूषण जी का विशेष आभार ।

प्रधान संपादक
डॉ. शशिकांत मिश्र (सह आचार्य)

सपनों का भारत

भारत मेरा देश महान,
सपनों की ये भरे उड़ान।
साकार कर सपनों को,
मानव का करे कल्याण।
जन–जन हो जाए एक इसका,
एकता ही हो अन्तिम बाण।
विश्व बन्धुत्व की कामना हो पूर्ण,
पा जाए यह उत्तम प्राण।
प्राचीन और नवीन का कर संगम,
सद पथ पर चले, सदा कर ध्यान।
सपनों की ये भरे उड़ान
उन्नति मार्ग पर चले सदा ही,
यही कामना, यही आह्वान।
बाधाएं आएं जो राह में,
डटा रहे बन चट्टान।
पार करे हर बाधा को,
भविष्य बनाए प्रकाशमान।
हो सदा इसके पथ पर रोशनी,
हो जाए प्रत्येक कार्य आसान।
जन–जन ज्योति हो इसका,
अनेकता में एकता बने पहचान।
भारत मेरा देश महान

डॉ० वन्दना शर्मा
(सहायक आचार्य)
हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग

प्रेम की जीत

जब धुंआ छट जाएगा
और बादल सब अपने घरों को रवाना हो जायेंगे
अन्धकार क्षितिज से निकलकर
पहाड़ों के पीछे विश्राम को चला जाएगा
और तारों की मुस्कराहट उभरते सूरज की रौशनी में मंद हो जायेगी
और कुछ गुलाब की कलियों से शरद ऋतु
ओस बनकर धरती को रिझाने लगे
और झुक गयी होंगी फसलें रात भर पुरवा के आलिंगन से
तब समझना की तुम्हारे प्रेम ने आखिरक
जीत ही लिया वो सब
जिसके लिए मौन हो गयी थी सुदूर उस कस्बे से आती रश्मि गीत।

सुमन कुमार, शोधार्थी
(अंग्रेजी विभाग)

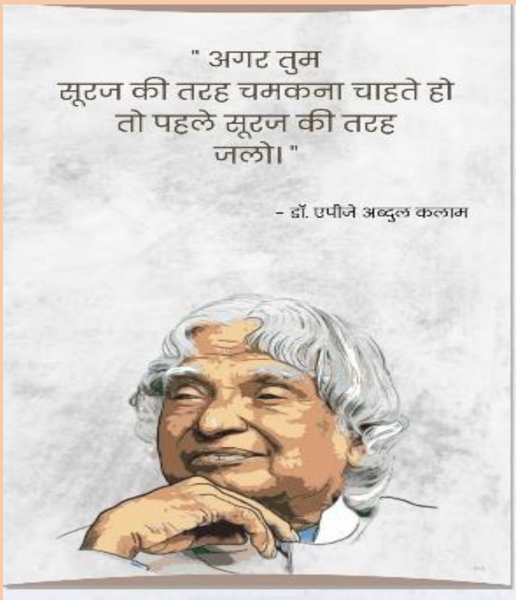

तुम कहते हो......

तुम कहते हो,

तुम कहते हो बेटी हुई है

कोमल कली और कोंपल हुई है,

मसल दो इसे और खत्म करो

न–न यह न स्वीकार है

उसे अपने अस्तित्व की दरकार है

जाएगी वह चाँद पर

जरूर जाएगी

तुम्हारा शर्तों का दिया पिटारा लेकर

जिस पर तुम देते हो आजादी,

उसे वहीं छोड़ वह आएगी

आकर आजादी मनाएगी

लेकिन क्या उसकी आजादी देख तुम पाओगे?

फिर से साजिश रचाओगे

उसके पंख कटवाओगे

और देख उसे छटपटाता

अपने पर इतराओगे

लेकिन यह भी कोई इतराना है

इसके बिना तुम्हारा अस्तित्व क्या है?

तुम्हें याद नहीं जब –जब वह साथ खड़ी हुई है,

हार भी बदल कर जीत हुई है,

इसलिए हो चलो साथ बहुत कुछ मिलकर कर जाना है

न अब कोई नया बहाना बनाना है

कहते हैं यह सदी स्त्री की

क्या पुनः मिट जाने को

नहीं यह नहीं होने देना है

उसका अस्तित्व बचाना है

साथ मिलकर यह कर जाना है।

डॉ. वंदना शर्मा
(सहायक आचार्य)
हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग

माँ

सबसे प्यारी,
सबसे न्यारी,
जगत की जननी है माँ!

रहती है स्वयं भूखी, पर बच्चों को न भूखा
सोने देती है माँ!!
अपने बच्चों की लाख गलतियाँ भी.....
सहज मुस्कान भर से है, माफ करती माँ

सबसे प्यारी,
सबसे न्यारी,
जगत की जननी है माँ!

अपनी इच्छाओं को भूलकर,
बच्चों की इच्छाओं को पूर्ण करती है, माँ

सबसे प्यारी,
सबसे न्यारी,
जगत की जननी है, माँ!

बच्चे के रोने पर,
सब काम भूलकर उसे चुप कराती है, माँ

सबसे प्यारी,
सबसे न्यारी,
जगत की जननी है माँ!

हर कवि है, ये कहता दुनिया की मोहब्बत है
फिजूल बस माँ की होती है, हर दुआ कुबूल!!

सबसे प्यारी,
सबसे न्यारी,
जगत की जननी है, माँ!

ललित विद्यार्थी
(हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग)

गजल

तुम्हारा चाहना हमसे ज्यादा है क्या
यानी मेरा इश्क अभी आधा है क्या

जो कहा था तुमने वो हम कर न पाए
हर इश्क की सीमा इक वादा है क्या

तुम हर बात पर हो खफा, हो नाराज
अभी से हमें छोड़ने का इरादा है क्या

तुझे हर बुराई में हर दफा मिलेंगे हम
बुरे वक्त ने तुम पर हमें लादा है क्या

एक वो सवाल जो रोज साथ है मेरे
'डालेश' का प्यार बहुत सादा है क्या

डालेश शर्मा, शोधार्थी
(हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग)

अमानत

अजीब सा अजनबीपन....
अजनबीपन!
खुद से
परिवार से मित्रों से
जैसे कुछ भी पहले जैसा
न रहा
या ढूंढ रहा
उस खोई हुई
अमानत को
जिसे बड़े जतन से
रखा था संभाल कर
जैसे कोई भीतर ही भीतर
काट खा रहा हो मुझे
अकेलापन!
जैसे अपनों में भी
कोई अपना नहीं
बस निभाए जा रहे हैं
हर फर्ज
हर कर्ज को
मिटाने के लिए
जैसे ढलती शाम को
भूल गया हो
परिंदा अपना ठौर
हर दिन लक्ष्यहीन
जैसे कोई नाव
नियत स्थान से
निकल तो गई नदी के
बहाव के साथ पर
अब अनजाने किनारों से
टकरा रही है
और ढूंढ़ रही है
अपना गंतव्य.....

शिवम, शोधार्थी
(हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग)

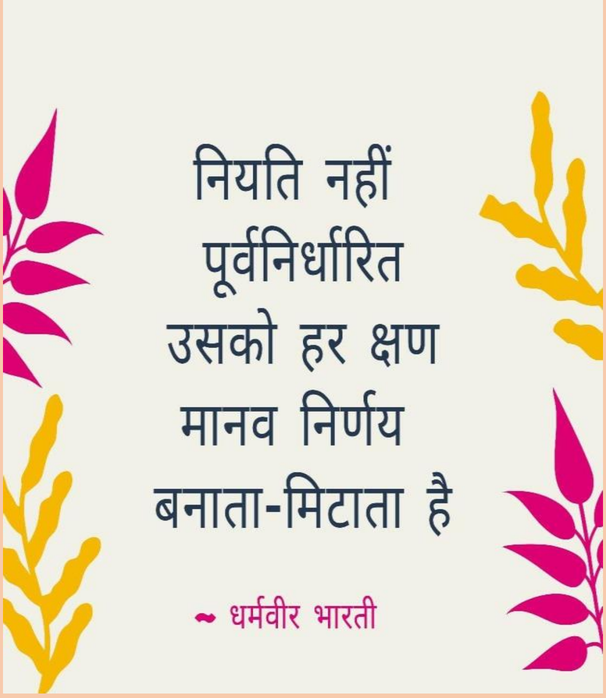

किस्सा

इस क्षणभंगुर जमाने से,
होश आते ही हर कदम पर मिली समस्या
बढ़ती समझ के साथ सवाल आया,
यही तो है जीवन का हिस्सा।
मंजिल के राहों पर चले,
तो स्मरण हुआ कि हर राह मे कांटे पड़े है,
तो फिर आत्म ने प्रश्न किया,
कि क्या यही होगा जीवन का किस्सा?
हाँ देखा हमने राष्ट्र में,
गरीबी की जकड़न, न्याय की होड़,
बेरोजगारी का जाल,
इनसे ही तो निकलने को चाहिए,
कुछ समाधान का हाल।
हर गली के कोने में भूख दिखती,
हर मजदूर के आँखो मे हैं दो वक्त की रोटी पा लेने की प्यास, और
मध्यवर्गीय परिवार, गरीबों को है गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की आस।
सरकारी रोजगार की खोज में
भटकते युवा लाखों–लाख,
आँखो मे बड़े बड़े सपने तो है,

पर हाथों मे मेहनत के सिवा है केवल राख ही राख।

सवाल ये है,
कि क्या संघर्ष का कोई मोल नहीं या मेहनत करने वालों का बोल नहीं।
नारी, इंसानियत का सम्मान,
बस कहने की बात,
घर और बाहर दोनों जगह, सुरक्षा पर प्रहार,
हर गली मे खड़ी है,
असुरक्षा की दीवार
इस आधुनिकता की दौड़ में,
रिश्तों का हो रहा है हास्य,
परिवार की बातें, दादा दादी का प्रेम अब होती हैं मोबाइल के पास।
इन्ही मुद्दो की हैं पुकार,
सुन लो ऐ राष्ट्र के कणर्धार, इन समस्याओं मे छिपी है जनता की आह पुकार।
यह जीवन है संघर्ष का,
तो सामाधान है क्या पास?

रोशनी
(बी.ए.बीएड आठवां सत्र)

कवि लिखता है क्यों?

लिखता हूँ बोझ ढ़ोने के लिए नहीं,
बल्कि बोझ हल्का करने के लिए......!

लिखता हूँ सिर्फ जीवन जीने के लिए नहीं,
बल्कि नवीन जीवन की राह गढ़ने के लिए...!

लिखता हूँ सिर्फ रौशनी के लिए नहीं,
बल्कि स्याह अंधेरों से एक गहरी 'लो' को साकार करने के लिए ....!

लिखता हूँ सिर्फ सुख के लिए नहीं,
बल्कि दुखों को और अधिक मांझने के लिए.!

लिखता हूँ सिर्फ प्रशस्ति के लिए नहीं, बल्कि
तिरस्कार और अधिक सहने के लिए...!

लिखता हूँ सिर्फ व्यक्तिगत के लिए नहीं,
बल्कि समस्त जगत को आनंदित करने के लिए....!

लिखता हूँ सिर्फ अधिकार के लिए नहीं,
बल्कि कर्तव्य को पूर्ण करने के लिए....!

लिखता हूँ जटिल होने के लिए नहीं,
बल्किसहज और सरल होने के लिए ....!

लिखता हूँ सिर्फ सीखने के लिए नहीं,
बल्कि सिखाने के लिए ...! सिखाने के लिए ...!
लिखता ही तो रहता हूँ मैं,

दिन–रात, सुबह शाम...!
लिखता हूँ मिटने के लिए नहीं,
बल्कि और अधिक लिखने के लिए....!!

अँशु कुमारी, शोधार्थी
(हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग)

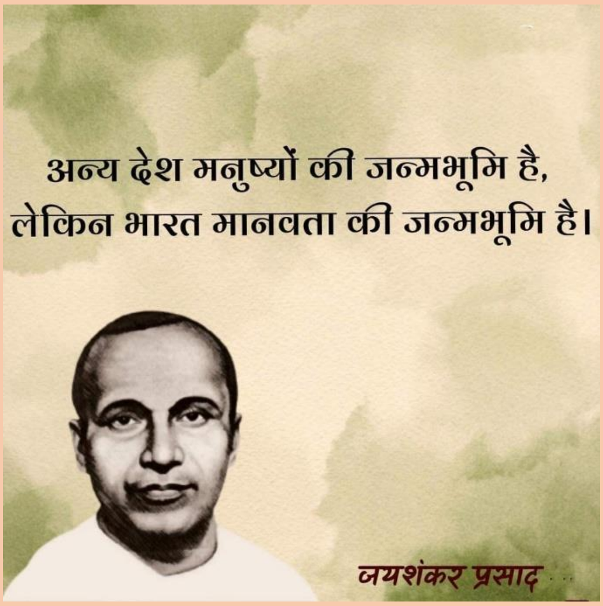

गजल

किससे औ क्या कहें हमें बता ही दीजिये।
कहने के लिये कोई मुद्दआ ही दीजिये।

चुप क्यों खड़े हैं कीजिये थोड़ी तो गुफ्तगू
ये जिंदगी जीने का फलसफा ही दीजिये।

कब तक करेंगे हम भी ये ना ,ना, नहीं,
नहीं पैमाना भर के हमको भी पिला ही दीजिये।

चिंगारी उठ रही है तो भड़काइये इसे
लगती नहीं है आग तो हवा ही दीजिये।

नाराजगी को दिल में दबाना सही नहीं
लब तक जो आ गई है तब सुना ही दीजिये।

मुझपर नहीं पड़ा कभी दुआओं का असर
अब ऐसा कीजिये कि बद्दुआ ही दीजिये।

हर्षित तिवारी,शोधार्थी
(हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग)

अन्तः सफलता!!

उगते सूरज के साथ आना होता हैं उसका
और ढलते सूरज के साथ लौट जाना होता है उसका?

बीतता जाता है समय...
साथ–साथ हम भी भागते जाते हैं....
बहुत कुछ छूट जाता है उस दौड़ में....
मगर बीते वक्त को वापिस नहीं ला पाते हैं।

करना चाहते हैं कड़ा परिश्रम
जाने क्यों बार–बार हार जाते हैं...?
सीखते हैं बहुत कुछ उस हार से....
अन्तः सफलता पाते हैं।
सफलता पाते हैं।.......

विशाखा
(हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग)

मेरा मेरा का शोर......

ये... सब है मेरा,

नहीं–नहीं कुछ नहीं है मेरा!!

अगर है नहीं ये मेरा तो फिर है, किसका?

अच्छा! ये तो हमारे दादा जी का है।

पर वे तो चल दिए ईश्वर की शरण

छोड़कर सब......कुछ!

अब, ये सबकुछ दादी जी का है।

यह घर, ये खेत, यह आम के पेड़, यह तालाब... और न जाने क्या–क्या!!

सब उनका ही तो है।

पर वो भी नहीं रहे यहाँ ....

चल दिए...ईश्वर की शरण!

सोचता हूँ कहते हैं सब ये मेरा मेरा

पर लेकर जाता न साथ कोई भी?

दादी जी के बाद ये सब उनकी संतान का हुआ।

ये भाई–बहन करते हैं जो प्यार....

करते हैं टकरार आपस में .....मेरा मेरा का शोर करके!!

पर न रहा सब दादा–दादी जी का

और न ही रहेगा हमारा –तुम्हारा

वास्तव में मनुष्य का है ही क्या?

है सब उस प्राणदाता का

जितने प्राण...

जितने श्वास वो देगा व्यक्ति उतना ही जी पायेगा।

भटकाओ खुद को कितना भी ये सत्य कभी न मिट पायेगा।

पर करते हैं जाने क्यों शोर सब मेरा मेरा का?

आखिर क्यो??

विक्रम सिंह, शोधार्थी

(हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग)

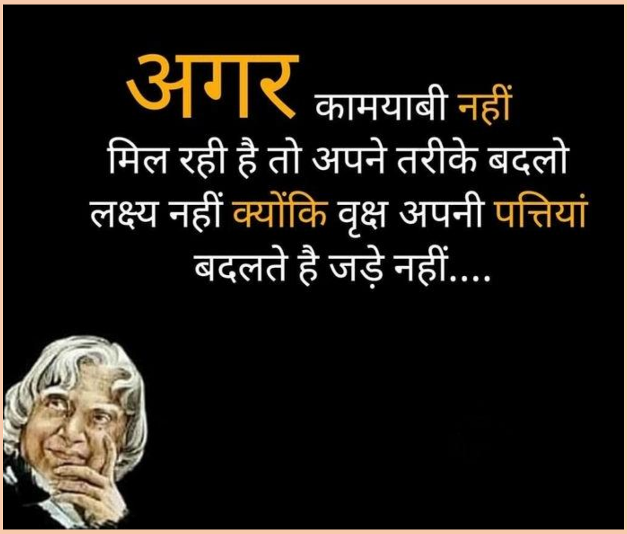

मिट्टी की पकड़

डगमगाता हूँ........

गिरता हूँ .....

विचलित होता हूँ ....

तनावग्रस्त भी होता हूँ...

पर, मिट्टी न गिरने देती है!

ये जीवन नया ही देती है!

कभी न मिटने देती है, अस्तित्व हमारा!!

बस पकड़े रखती है

जकड़े रखती है

अपनी गोदुली में....

जाते हैं दूर हम कितने ही अपने मूल से पर मिट न सकती कभी इसकी सुगंध हमारे

वजूद से.....!!

जाते हैं कितनी ही बार दूर हम घर से

पर सच कहें, गया न दूर घर कभी हम से!!

हम गमले का न वो कभी फूल हुए

जो हवा के एक झोंके से चटक देता है खुदको

हो जाता है टुकड़े टुकड़े खोकर खुदको!

हम तो हैं, वो पेड़

जो आंधी आये तूफान आये

फिर भी खोता नहीं कभी खुदको...

आ जाता है, हो लेता है वापिस अपने उस मूल में!!

आखिर ये मिट्टी न कभी मिटने देती!

माँ....तो माँ ही होती है!

माँ ....माँ ही होती है!!

अँशु कुमारी, शोधार्थी

(हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग)

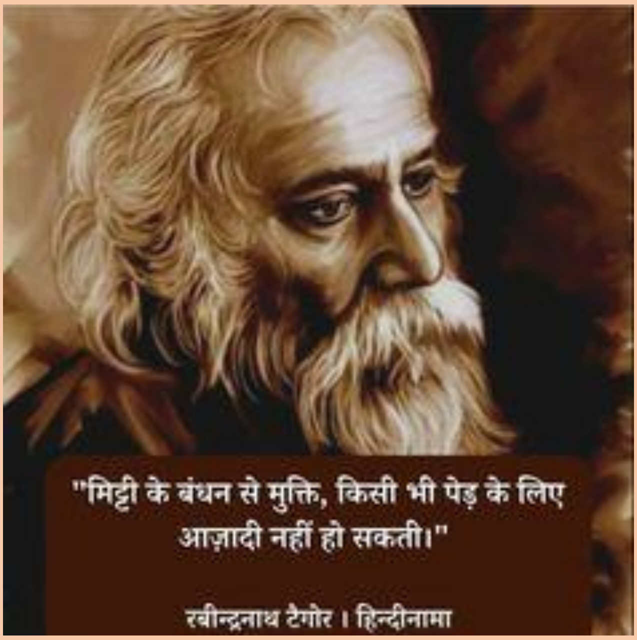

सवालों के घेरे में!

तुम लोगों को क्या पता
कैसे खुद को जिंदा रखा है।
तुम तो बस इस बेरुख और
शांत मिजाज से परेशान हो
हमने तो जीने की सारी उम्मीदों को
दफना रखा है।।
नहीं बोलता ज्यादा,
जहन में कई आवाजें गूंजती है
चिल्लाकर रो न पड़ू,
इसलिए जबरन खुद को चुप रखा है।।
परेशानी क्या है?
जो बार–बार तंग करते हो।
मुझे खुद पसंद नहीं ये
शख्सियत और रवैय्या मेरा
हैरान हूँ क्या सोचते हो ?
जो ये काम करते हो!!
खोयाँ हूँ, व्यस्त हूँ,
खुद को बाहर
निकालने में लगा हूँ
अब तक जिंदा हूँ काफी नहीं,
जो हसने की भी उम्मीद करते हो।।
नहीं रहे अब शोक–पसंद,
नहीं रमता मन त्योहार में
अब तो बस खुद में डूबा रहने में
भलाई ढूँढता हूँ।।
लगता है जिदगी से
वास्ता छूटने लगा है
शाम होते ही मूक
एक सूना कोना ढूंढता हूँ।।
नाचो–गाओ मौज उड़ाओ,
तुम्हारा मन तुम जैसे जिओ
तुम्हें मुझसे चाहिए क्या ?
मैं तो बस यही पूछता हूँ।।
अगर मिला समय तो बताऊंगा
मेरी सोच जिदंगी के बारे में
जड़ समेत पौधे को उखाड़
फेंकने जैसी कुछ कहानी है
फिर वह कभी न खिल पाया,
कुछ ऐसा ही हाल है मेरे बारे में
घर, यार, प्यार

कुछ भी हासिल कर न रख सका

कुछ यूँ टूटा हूँ कि क्या बताऊं इस बारे में?

बेहर हाल मैंने उन सबके बारे में बोलना भी छोड़ दिया है

संयम वह मित्र है,

जो जरा देर के लिए चाहे आँखों से

जिस याद ने जख्म

बन तकलीफ दी मुझे ओझल हो जाए,

पर धारा के साथ बह नहीं सकता,

उसे याद कर मलाल करना छोड़ दिया है

संयम अजेय है,

अमर है। (मुंशी प्रेमचन्द)

चिल्लाने पर भी जब...

आवाज सही जगह न पहुँच सके तो

उन रूदन–आलापों,

को तोड़ मरोड़ फेंक सा दिया है।।

महेश

(हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग)

एकांतिक

कई बार शोर के दरमियान

मन एकांत तलाशता है

यह ह्रदय जो कभी उत्साह,करुणा और द्वेष से लिप्त हो जाता है उसकी खोज है एकांत,

जहां बैर, प्रेम, मोह से परे अवसाद को भूल

शून्य में समाहित होने की अभिलाषा होती है,

यह एकांत जिसमें कभी बंद होकर मुक्तिबोध ने अंधेरे में रची और अज्ञेय ने अल्मोड़ा के कॉटेज में प्रकृति के बीच असाध्यवीणा,

यह एकांत दुनिया से पलायन नहीं अपितु आत्मशोधन की एक प्रक्रिया है जिसमें डूबकर मैं स्वयं से स्वयं का परिचय करा सकूं,

मैं खुद को पहचान सकूं

दुनिया की भीड़ में जो कहीं खो गई है उस आत्मा को सारगर्भित बना सकूं,

यह एकांत जो केवल मेरा हो

मेरा समर्पित एकांत।

वैष्णवी त्रिपाठी, शोधार्थी

(हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग)

आरजू–ए–इस्तकबाल

सुना था, अब कहता हूँ क्योंकि

अब लगता है सब सच ही था।

खुद और खुदा को भूल जाना

शायद आशिक का हक ही था।।

शायर लिखते है बहार–ए–मौसम

हमने तेरी झलक से पतझड़ में सावन देखा है।

है मौसम गर्मी का पर सच मानो

तुझे खोने के डर से खुद को कांपते देखा है।

मेरी हसरत है कि तेरी खूबसूरती के बारे में कुछ कहूँ? पर कर यकिन , तेरी आखों के सिवा मैंने देखा ही क्या है

होते होंगे हसीन मौसन शहर और लोग भी

पर तेरे सिवा मेरा यहाँ रखा ही क्या है?

कापते है हाथ–होठ कुछ भी बंया करने से

बदनसीब हूँ कभी हासिल न हुआ जो चाहा

करके देखा सबपे यकीन इस जहान में

पर मेरे हिस्से में हमेशा अन्धेरा ही आया।

कागज को बताने भी से हिचकिचाता हूँ

सुना है ख्वाब बताने से पूरे नहीं होते

अगर जहन में नहीं आती तेरी याद तो

आज हम शायद जिन्दा भी न होते

जरूरी नहीं कि तुम्हारे दिल में भी ये हलचल हो ही

हमें है तुमसे इश्क, तुम्हे हो न हो मुझे मालूम नहीं

सोचता हूँ करदु इस्तकबाल और इजहार इश्क का

पर शायद तवाफे आरजू पूरी हो न हो, पता नहीं सपनों का भारत.......

महेश

(हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग)

गौरैया

ऐ प्यारी गौरैया मेरी!

चल तू मेरे साथ वहाँ पर

जहाँ बिचारे छोटे पौधे बिन पोषण के सूख रहे हैं.....

सूख रहे उन पौधों को हम पानी देंगे

फिर से हरेभरे होकर वे ठंढी शीतल मन्द बयारों से सबके मन को जीतेंगे

चल कि हमें उन ठहरे पानी में भी तो छोटे कंकड़ से हलचल भी पैदा करनी है

उन्हें उठाकर, उनके अंदर लहर जगाकर, उसी लहर से ऊँचे ऊँचे चट्टानों को

रोक रहे जो धारा उनकी, उसे गिराकर, उनके जल की शीतलता औ तीव्र वेग को

जन जन तक फिर पहुंचाना है

ऐ छुटकी गौरैया

अपने पंख पसारे उड़ चल मेरे साथ गगन में, पंख भले ही हों छोटे पर इन्हें नापना पूरा नभ है,

चल कि जहाँ पर खुशियों का दुपहरी सजी हो, प्रेमधार की नदी उमड़कर सबका मन शीतल करती हो

और हँसी की शाम क्षितिज से

मीठे मीठे गीत सुनाते नाँच रही हो,

चल हम तुम भी उसी नगर में खो जाते हैं,

दूर क्षितिज में मीठी मीठी लोरी सुनकर सो जाते हैं ...

हर्षित तिवारी, शोधार्थी
(हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग)

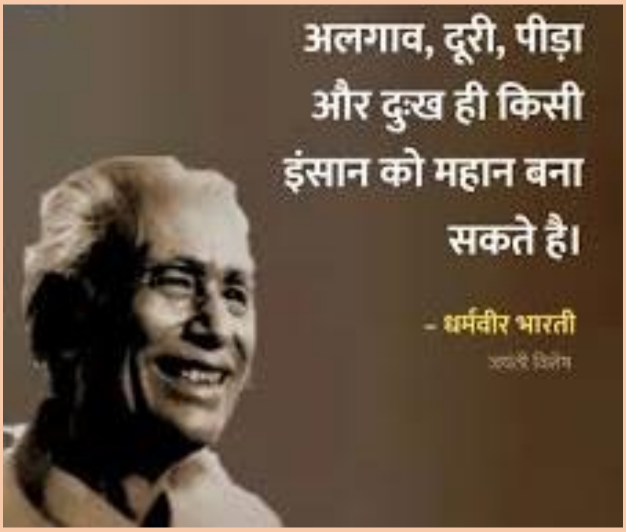

जीवन कभी कोरा कागज नहीं..

जीवन कभी कोरा कागज नहीं होता मेरे गीतकार

इस कागज पर तमाम बार

तमाम चीजें लिखकर मिटाई जा चुकी हैं

तुम जिसे कोरा समझने की भूल कर रहे हो

ध्यान से देखो

उसमें लिखे गए शब्द

खींचे गए स्कैच

और भरे गए रंगों की परछाईं दिखाई देगी

उसके पास कान लगाकर सुनो तो

तुम्हें दूर सिवानों के सूनेपन से आती हुई

झींगुरों के आवाज की सनसनाहट सुनाई देगी

तुम उसे अपने नाक के पास ले जाओ

तुम्हें उसमें तुम्हारे ही जमीन के मिट्टी की

गन्ध महसूस होगी

हाँ ,वही जमीन जहाँ तुमने कभी प्रेम के बीज बोए थे

जहाँ यादों की एक घनी फसल लहलहाई थी

और उसे तुमने पकने दिया था

फिर पक जाने पर उसे काट दिया था और

जिसका अन्न तुम बाँट रहे हो पूरी दुनिया को।

तुम एक बार उस कागज को

अपने कलेजे से लगाकर देखो

तुम्हारे हृदय के एक एक रिदम के साथ उसमें हलचल होगी

तुम महसूस कर सकोगे

तुम्हारे कोरे कागज से न सुनाई देने वाले संगीत के स्वरों को।

जीवन कभी कोरा कागज नहीं होता मेरे गीतकार

उसमें से सब कुछ मिट जाने पर भी

लेखनी की गहराई बची रहती है

जो छोड़ जाती है एक बदसूरत तस्वीर

जैसे साँप छोड़ जाता है अपना केचुल।

हर्षित तिवारी, शोधार्थी
(हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग)

विगत

गुजरे रस्ते, रोते हंसते जिंदगी के

थे शौक कितने सस्ते जिंदगी के

कहीं प्यास थी तो कहीं था पागलपन

कहीं जवानी थी तो कहीं था बचपन

कहीं दूरियां थीं तो कहीं था अपनापन

कहीं रूखी–सूखी बातें तो कहीं सावन

समय बदला लोग बदले

मगर नहीं बदला तो ये एहसास

यूं ही कट गई उम्र और

नहीं चला पता घसते जिंदगी के

गुजरे रस्ते, रोते हंसते जिंदगी के

थे शौक कितने सस्ते जिंदगी के

जब था कैद में तब आजादी की चाह

थी

जब हुआ आजाद तब कैद की ओर

निगाह थी

जहां था जिन्दा खुद में,

दूर खुदसे वो राह थी

देखा अपने भीतर तो केवल एक

आह थी

यूं ही ख्याल,

जिक्र व चर्चाएं

और न जाने कितनी बातें हुई

मगर न हुआ इल्म तो वह

इस कश्मकश में फसते जिंदगी के

गुजरे रस्ते,

रोते हंसते जिंदगी के

थे शौक कितने सस्ते जिंदगी के

डालेश शर्मा, शोधार्थी

(हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग)

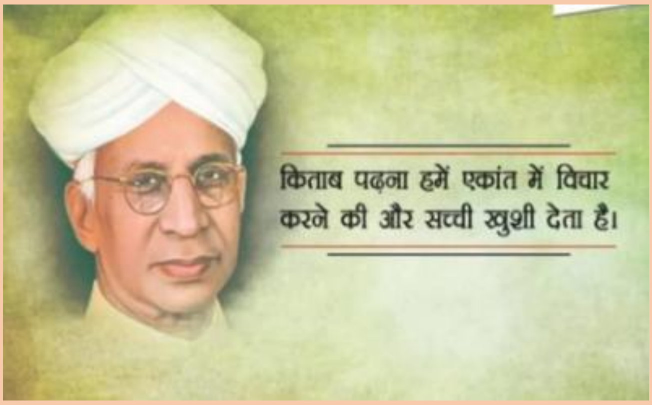

संदेश

विद्यार्थी जीवन मनुष्य का सबसे महत्वपूर्ण समय होता है। इस समय में अर्जित संस्कार से सीखी हुई विधाए एवं मानव मूल्य हमारा भविष्य निर्धारण करती हैं। इसलिए यह आवश्यक है कि मनुष्य अपने विद्यार्थी जीवन से ही देश के प्रति अपने कर्तव्य को समझे आमतौर पर विद्यालयों में मानव मूल्यों पर नैतिक वचन प्रार्थना सभा में कहे जाते रहे हैं किंतु आज आवश्यकता है कि बच्चे को पठन–पाठन के साथ–साथ अच्छा नागरिक बनाया जाए ताकि वह साकारात्मक विचारों को आत्मसात कर स्वयं के जीवन को सफल बना सके। आज विद्यार्थियों को विभिन्न विषयों यथा विज्ञान, गणित, अंग्रेजी, इतिहास, भूगोल, भाषा आदि विषयों में विभिन्न तकनीकों का उपयोग कर शिक्षक के द्वारा पारंगत बनाने में सफल हो रहे हैं। जिससे वह आगे चलकर प्रशासनिक अधिकारी, डॉक्टर, इंजीनियर, वैज्ञानिक, अध्यापक या अन्य प्रोफेशनल बन रहे हैं किंतु कहीं ना कहीं हम सबकी कोशिश होनी चाहिए कि वह एक अच्छा, ईमानदार, कर्तव्यनिष्ठ, परिश्रमी, देशभक्त, एवं समझदार मनुष्य बन सके।

इंद्रा देवी, शोधार्थी
(हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग)

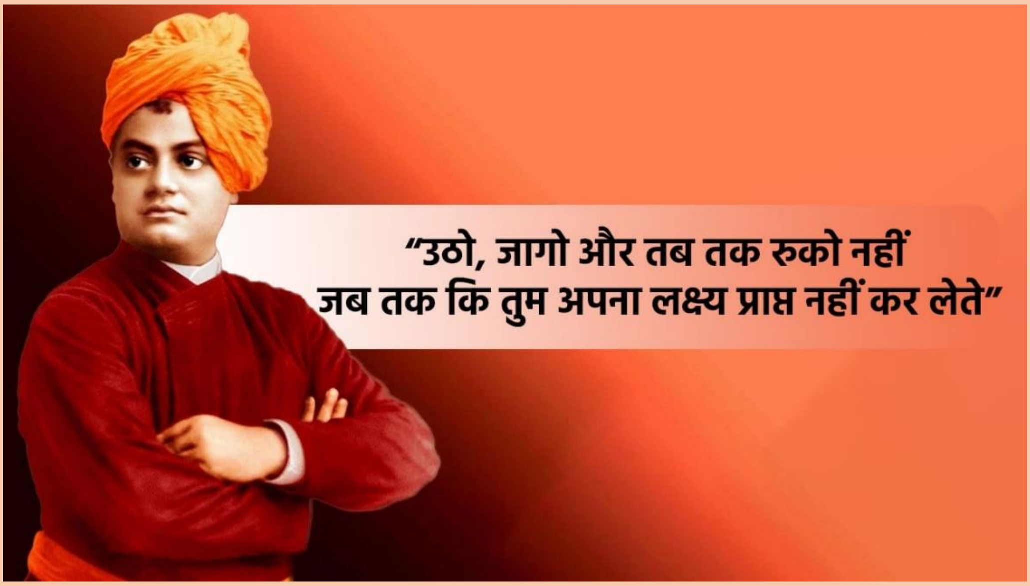

स्मृति विशेषः बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' के उपलक्ष में

कवि, कुछ ऐसी तान सुनाओ, जिससे उथल–पुथल मच जाए!
एक हिलोर इधर से आए, एक हिलोर उधर से आए,
प्राणों के लाले पड़ जाएँ, त्राहि–त्राहि स्वर नभ में छाएय
नाश और सत्यानाशों का धुआँधार जग में छा जाए,

बरसे आग, जलद जल जाएँ, भस्मसात् भूधर हो जाएँय
पाप पुण्य सदसद् भावों की धूल उड़ उठे दाएँ–बाएँ,
नभ का वक्षस्थल फट जाए, तारे टूक–टूक हो जाएँय
कवि, कुछ ऐसी तान सुनाओ, जिससे उथल–पुथल मच जाए!

माता की छाती का अमृतमय पय कालकूट हो जाए,
आँखों का पानी सूखे, हाँ, वह ख़ून की घूँट हो जाएय
एक ओर कायरता काँपे, गतानुगति विगलित हो जाए,
अंधे मूढ़ विचारों की वह अचल शिला विचलित हो जाएय

और दूसरी ओर कँपा देनेवाला गर्जन उठ धाए,
अंतरिक्ष में एक उसी नाशक तर्जन की ध्वनि मँडराएय
कवि, कुछ ऐसी तान सुनाओ, जिससे उथल–पुथल मच जाए!
नियम और उपनियमों के ये बंधन टूट–टूक हो जाएँ,

विश्वंभर की पोषक वीणा के सब तार मूक हो जाएँय
शांति–दंड टूटे, उस महा रुद्र का सिंहासन थर्राए,
उसकी पोषक श्वासोच्छ्वास, विश्व के प्रांगण में घहराएय
नाश! नाश!! हाँ, महानाश!!! की प्रलयंकरी आँख खुल जाए,

कवि, कुछ ऐसी तान सुनाओ, जिससे उथल–पुथल मच जाए!
”सावधान! मेरी वीणा में चिनगारियाँ आन बैठी हैं,
टूटी हैं मिजराबें, युगलांगुलियाँ ये मेरी ऐंठी हैंय
कंठ रुका जाता है महानाश का गीत रुद्ध होता है,

आग लगेगी क्षण में, हृत्तल में अब क्षुब्ध युद्ध होता हैय
झाड़ और झंखाड़ व्याप्त हैं इस ज्वलंत गायन के स्वर से,
रुद्ध गीत की क्षुब्ध तान निकली है मेरे अंतरतर से!
”कण–कण में है व्याप्त वही स्वर, रोम–रोम गाता है वह ध्वनि,

वही तीन गाती रहती है कालकूट फणि की चिंतामणिय
जीवन–ज्योति लुप्त है अहा! सुप्त हैं संरक्षण की घड़ियाँ,
लटक रही हैं प्रतिफल में इस नाशक संभक्षण की लड़ियाँय
चकनाचूर करो जग को, गूँजे ब्रह्मांड नाश के स्वर से,

रुद्ध गीत की क्रुद्ध तान निकली है मेरे अंतरतर से!
दिल को मसल–मसल मेंहदी रचवा आया हूँ मैं यह देखो,
एक–एक अंगुलि–परिचालन में नाशक तांडव को पेखो!
विश्वमूर्ति! हट जाओ, यह वीभत्स प्रहार सहे न सहेगा,

टुकड़े–टुकड़े हो जाओगी, नाश–मात्र अवशेष रहेगाय
आज देख आया हूँ, जीवन के सब राज समझ आया हूँ,
भ्रू–विलास में महानाश के पोषक सूत्र परख आया हूँय
जीवनगीत भुला दो, कंठ मिला दो मृत्युगीत के स्वर से,

रुद्ध गीत की क्रुद्ध तान निकली है मेरे अंतरतर से!
”जीवर में जंजीर पड़ी खन–खन करती है मोहक स्वर से
‘बरसों की साथिन हूँ तोड़ोगे क्या तुम अपने इस कर से?,
अंदर आग छिपी है, इसे भड़क उठने दो एक बार अब,

ज्वालामुखी शांत है, इसे कड़क उठने दो एक बार अबय
दहल जाय दिल, पैर लड़खड़ाएँ, कँप जाय कलेजा उनका,
सिर चक्कर खाने लग जाए, टूटे बंधन शासन–गुण काय
नाश स्वयं कह उठे कड़ककर उस गंभीर कर्कश–से स्वर से,

रुद्ध गीत की क्रुद्ध तान निकली है मेरे अंतरतर से’!“

विप्लव गान.
बालकृष्ण शर्मा ‘नवीन’
(8 दिसम्बर 1897–29 अप्रैल 1960)